डा० कन्हैयालाल सहल
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बिड़ला आर्ट्स कॉलेज, पिलानी

नियति का स्वरूप

काव्यप्रकाशकार ने कवि-भारती का जयजयकार करते हुए 'नियतिकृतनियमरहिता' का प्रयोग किया है जिससे स्पष्ट है कि वे नियति[1] को नियम-समष्टि अथवा नियमन करने वाली शक्ति के रूप में ग्रहण करते हैं. 'नियति' शब्द का इस तरह का प्रयोग वैदिक 'ऋत' से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है जहाँ ऋत के कारण ही संसार में नियम-चक्र चलता है तथा ब्रह्माण्ड में व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है.[2]

वैज्ञानिक अध्ययन और प्रयोगों के परिणामस्वरूप अब यह तथ्य अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि यह विश्व कुछ ऐसे नियमों द्वारा संचालित है जो अकाट्य और अनुल्लंघनीय है. इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति विश्व-शृंखला की एक कड़ी मात्र है. संस्कृत के अनेक प्राचीन ग्रंथों में नियति के स्वरूप की विवेचना की गई है. उदाहरणार्थ योगवासिष्ठ के निम्नलिखित श्लोकों को लीजिए—

> यथास्थितं ब्रह्मतत्त्वं सत्ता नियतिरुच्यते ।
> सा विनेतुर्विनेयत्वं सा विनेयविनेयता । —प्रकरण २, सर्ग १० श्लोक १.
> आदिसर्गे हि नियतिर्भाववैचित्र्यमक्षयम् ।
> अनेनेत्थं सदा भाव्यमिति संपद्यते परम् । —प्रकरण ३, सर्ग ६२, श्लोक ९.
> महासत्तेति कथिता महाचितिरित स्मृता ।
> महाशक्तिरिति ख्याता महादृष्टिरिति स्थिता ।१०।
> महाक्रियेति गदिता महोद्भव इति स्मृता ।
> महास्पन्द इति प्रौढा महात्मैकतयोदिता ।११।
> तृणानीव जगत्येवमिति दैत्याः सुरा इति ।
> इति नागा इति नगा इत्याकल्पं कृता स्थितिः ।१२।

अर्थात् सर्वत्र सम रूप से स्थित जो व्यापक ब्रह्म की सत्ता है, उसी का नाम नियति है, वही कार्य-कारण के नियम्य और नियामक रूप से स्थित है. कारण होने पर कार्य अवश्य होता है और कार्य होने पर उसका कोई कारण अवश्य होता है. इसी नियम का नाम नियति है. वही कारण आदि की नियामकता है और वही कार्य आदि की नियम्यता भी है.

सृष्टि के प्रारम्भ से ही अग्नि आदि की उष्णता और ऊर्ध्वज्वलन नियति के कारण हैं, पर ब्रह्म स्वयं अपने संकल्प से पदार्थों की विचित्रतासहित अक्षय नियति का रूप धारण कर लेती है. वही नियति संपूर्ण ब्रह्माण्डों की स्थिति, विस्तार,

---

१. नियम्यन्ते धर्मा अनया इति नियतिः ।

२. There is no error in the Eternal plan, All kings are working for the final good of man.
—Wordsworth

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामर्थ्य, विवेक, रचना, जन्म और अर्थक्रियाकारितादि की हेतुता से महासत्ता, महाचिति, महाशक्ति, महादृष्टि, महाक्रिया, महाउद्भव और महास्पन्द, गति इत्यादि नामों से कही गई है. तृणों के समान सब जगत् का परिवर्तन करती हुई—दैत्य इस प्रकार के क्रूर हैं, देवता इस प्रकार शान्त हैं, नाग ऐसे हैं, पर्वत ऐसे जड़ हैं इत्यादि रूप से कल्पपर्यन्त नियति अपने रूप में स्थित रहती है.

× × ×

न शक्यते लंघयितुमपि रुद्रादिबुद्धिभः । —३,६२,२.
सर्वज्ञोऽपि बहुज्ञोऽपि माधवोऽपि, हरोऽपि च ।
अन्यथा नियतिं कर्तुं न शक्तः कश्चिदेव हि । —५,८९,२९.
सर्गादौ या यथारूढा संविक्तचनसंततिः ।
साऽद्याप्यचलिताऽन्येन स्थिता नियतिरुच्यते । —३,५४,२२.
आमहारुद्रपर्यन्तमिदमित्थमिति स्थितेः ।
आतृणपद्मजस्पन्दं नियमान्नियतिः स्मृता । —६,३७,२१.

अर्थात् रुद्रादि देवता भी नियति का उल्लंघन नहीं कर सकते. माधव और हर के समान सर्वज्ञ और बहुज्ञ भी नियति के नियमों में व्यतिक्रम नहीं कर सकते. वर्तमान विश्व के प्रारम्भ में नियति की जैसी कल्पना की गई थी, उसी रूप में वह आज भी अचल भाव से स्थित है. रुद्र से लेकर छोटे-से-छोटे तृण पर्यन्त नियति का ही नियमन-व्यापार सर्वत्र दिखलाई पड़ता है. इस नियमन के कारण ही इसे नियति कहा गया है.

योगवासिष्ठ में ही नियति की नटी के रूप में भी कल्पना की गई है—

नियतिर्नित्यमुद्वेगवर्जिता परिमार्जिता ।
एषा नृत्यति वै नृत्यं जगज्जालकनाटकम् । —प्रकरण ६, सर्ग ३७, श्लोक २३.

अर्थात् यह नियति नित्य उद्वेगरहित तथा परिमार्जित रहते हुए जगज्जाल रूप नाटक रचती रहती है. Rational Mysticism के लेखक ने भी नियति के प्रभुत्व को स्वीकार किया है—"Individual man can modify the course of nature on the earth in many minor ways; but he can not alter the course of nature as a whole, that is to say, those cosmic happenings which are determind by a higher power, or by higher powers" —(Kingsland) : Rational Mysticism p 354

अर्थात् बहुत से छोटे-मोटे रूपों में तो व्यक्ति प्रकृति के कार्य-व्यापार में रूपान्तर उपस्थित कर सकता है किन्तु कुल मिलाकर वह प्रकृति की पद्धति को बदल नहीं सकता अर्थात् विश्व की जो घटनाएँ किसी उच्चतर शक्ति अथवा उच्चतर शक्तियों द्वारा नियत कर दी जाती हैं, उनमें परिवर्तन उपस्थित करना व्यक्ति के वश का रोग नहीं. योगवासिष्ठकार के मतानुसार नियति विश्व की नियामिका शक्ति है, जिसके अनुशासन को अखिल भुवन तथा चर और अचर सभी स्वीकार करते हैं. एक छोटी-सी सभा के संचालन के लिये भी जब नियम बनाए जाते हैं, तब इस विराट् ब्रह्माण्ड के लिये नियमों की कितनी अधिक आवश्यकता है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है. नियमों के अभाव में सर्वत्र धांधली और अव्यवस्था फैल जायगी, कर्म-व्यवस्था के संबन्ध में वेद में भी कहा गया है—

'न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति ,
अनूनं निहितं पात्रं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशति ।'

अर्थात् कर्म-व्यवस्था में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं हो सकती. आम का बीज डालने से जमीन में आम ही उगता है. यह कारण-कार्यविधान विश्व में सर्वत्र लागू है. यहां कोई आधार या सिफारिश भी नहीं चलती और न यही संभव है कि मित्रों के साथ गति प्राप्त की जा सके. किसी भी बाह्य कारण से हमारे इस कर्म-फल-पात्र में कोई घटा-बढ़ी नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुई. जैसा और जितना हमने इसे भरा, वैसा और उतना ही यह सुरक्षित है. पकाने वाले को पका पदार्थ फिर आ मिलता है अर्थात् कर्म-फल से छुटकारा नहीं मिलता.

शैवागमों द्वारा किया गया नियति का निरूपण भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है. नियति शैवागम दर्शन का एक विशिष्ट शब्द है जो उस तत्त्व के अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसके कारण प्रत्येक वस्तु की कारिका शक्ति नियत रहती है. 'नियतिर्नियोजनां धत्ते विशिष्टे कार्यमण्डले.'

नियति के कारण ही सरसों के बीज से सरसों का अंकुर फूटता है और अग्नि में केवल जलाने की शक्ति है, नियति के कारण ही पवन में जल को आन्दोलित करने की क्षमता पाई जाती है.

बहुत से नियतिवादियों का तो कहना यह है कि संसार में जो आपाततः आकस्मिक और आश्चर्यमयी घटनाएँ घटित होती हुई दिखलाई पड़ती हैं, वे वस्तुतः न आकस्मिक होती हैं और न आश्चर्यमयी. आकस्मिकता और आश्चर्य की सत्ता तो उन लोगों के लिये है जो नियति के रहस्य को हृदयंगम नहीं कर पाते. नियति यदि विश्व की नियामिका शक्ति है, यदि यह कर्म-चक्र की संचालिका है, यदि नियति की प्रेरणा से ही यह गोलक, कर्म-चक्र की भांति घूम रहा है तो अवश्य ही यह सब किसी विधान के अन्तर्गत होता होगा.

किन्तु इसके विपरीत एक विचारधारा ऐसी भी है जो भाग्य को अन्धा मान कर चलती है. योरोपीय देशों के लोगों का विश्वास था कि कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जो मनुष्य के जन्म के समय ही उसके संपूर्ण जीवन की गतिविधि निश्चित कर हमेशा के लिये उसके भाग्य का निपटारा कर देती है. भाग्य, वह अवश्यंभावी दैवी विधान है जिसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ और विशेषतः मनुष्य के सब कार्य-उन्नति, अवनति, नाश आदि पहले से ही निश्चित रहते हैं और जिससे अन्यथा कुछ हो ही नहीं सकता. अशिक्षितों में से अधिकांश लोगों का यही विश्वास रहता है कि संसार में जो कुछ होता है, वह सदा भाग्य से ही होता है और उस पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं होता. साधारणतः शरीर में भाग्य का स्थान ललाट माना जाता है. बहुत-से लोग यह मानते हैं कि छठी के दिन भाग्य की देवी शिशु के ललाट पर भाग्य का अंकन कर जाती है जिसमें न राई घटती है, न तिल बढ़ता है. सामान्य लोगों की दृष्टि में भाग्य अन्धा है और उसके द्वारा नियोजित कार्य-व्यापार में कारण-कार्य की कोई शृंखला नहीं दिखलाई पड़ती. ग्रीस देश के दुःखान्त नाटकों में भी किस्मत की जो कल्पना की गई है, उसके अनुसार वह एक ऐसी निरपेक्ष शक्ति है जिसके अनुशासन को सभी स्वीकार करते हैं किन्तु स्वयं वह किसी भी प्रकार के प्राकृतिक अथवा नैतिक विधान को मानकर नहीं चलती.

स्व० डॉ० अन्सारी किसी रोगी की चिकित्सा के सिलसिले में रेल द्वारा यात्रा कर रहे थे. डॉक्टर साहब उन महाभागों में से थे, जो गांधीजी की भयंकर-से-भयंकर बीमारीकी खबर सुनते ही महात्माजी को सूचित किया करते थे कि मैं आपको मृत्यु के मुख से छुड़ा लाऊँगा किन्तु उन्हीं डॉक्टर अन्सारी को रेल के डिब्बे में ही जब हृद्रोग ने आ दबाया तो कहने लगे—'मैं मृत्यु के पद-चापों की निकटतम आती हुई ध्वनि को सुन रहा हूँ. चाहता हूं कि कभी विधि के विधान में कुछ दिवस अपने लिये और सुरक्षित करवा लूं किन्तु कोई उपाय नहीं, कोई चारा नहीं. वे ही डॉक्टर साहब, जो किसी दूसरे को मृत्यु के भीषण मुख से निकालने जा रहे थे, स्वयं कराल काल के गर्भ में समा गये.

डाण्टे के 'इन्फर्नो' तथा 'होमर' के 'ईलियड' और 'ओडीसी' से लेकर आधुनिक युग तक के लेखकों ने भवितव्यता की प्रबलता को स्वीकार किया है. किन्तु जो भवितव्य है, वह क्या पहले से नियत है? क्या वह किसी कारण-कार्य-परम्परा का अनुसरण करता है अथवा उनका सारा कार्य व्यापार अन्धवत्-प्रवृत्त होता है ? इस प्रकार के अनेक प्रश्न भवितव्यता के सम्बन्ध में हमारे मन में उठे विना नहीं रहते. दुनिया के मनीषियों ने इस विषय पर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं. चीन की एक कहावत में कहा गया है कि बीमारी का इलाज हो जाता है, किन्तु भाग्य का नहीं. अनेक बार ऐसा हुआ है कि भाग्य से बचने के लिये किसी ने जिस मार्ग का अनुसरण किया, उसी मार्ग में वह अपने दुर्भाग्य का शिकार हो गया. इस सम्बन्ध में राबर्ट साऊदे का निम्नलिखित कथन उल्लेख्य है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"The poor slaves...must drag the car if Destiny wherever she drives, inexorable and blind
जो हमारे भाग्य की गाड़ी चलती है, वह यदि अन्धी हो तो फिर इस जीवन का क्या ठिकाना है.

उक्त विवेचन को पढ़ कर ऐसा लगता है कि यदि इस विश्व में सब कुछ पूर्वनिर्दिष्ट है तो क्या मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति के लिये यहाँ कोई स्थान नहीं है ? दर्शन-शास्त्र का यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है जिस पर गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है.

डा० राधाकृष्णन् ने शायद कहीं कहा था कि 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' केवल पाणिनि का ही सूत्र नहीं, वह हमारे देश का दार्शनिक सूत्र भी है. प्राकृतिक जगत् की वस्तुओं की भांति मनुष्य वस्तु नहीं, वह वस्तुओं को अपनी इच्छानुसार रूप देने वाला कर्त्ता है. जब वैज्ञानिक किसी वस्तु का आविष्कार करता है, तब वह उस वस्तु से अपने को अलग कर लेता है और तब उसके रहस्योद्घाटन का प्रयत्न करता है. इससे स्पष्ट है कि जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है, उसमें अपनी स्वतन्त्र इच्छा—शक्ति का तत्त्व सन्निहित है. वह तत्त्व वस्तु-बाह्य अथवा आन्तरिक है. इस तत्त्व की जब हम उपेक्षा करने लगते हैं तब हम अपने आप को मात्र वस्तु मान लेते हैं. जड़ पदार्थों की भांति हम अपने आपको यंत्र का एक पुर्जा समझने लगते हैं और उस स्वतन्त्रता से अपने आपको वंचित कर लेते हैं—जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है.

मनुष्य नियति के अधीन है अथवा कर्म करने में स्वतन्त्र है, इस प्रश्न का वेदान्त ने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया है. वेदान्त के अनुसार जब तक मनुष्य अविद्या के वशीभूत रहता है, तब तक वह स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता. मोक्ष अथवा स्वातन्त्र्य, विद्या द्वारा ही सम्भव है. जो मनुष्य इच्छा तृष्णा अथवा वासनाओं का शिकार है, वह स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता. स्वतन्त्र बनने के लिए सतत साधना द्वारा उसे आत्म-साक्षात्कार करना होगा. साथ ही यह भी सत्य है कि मनुष्य की मनुष्यता इस स्वातन्त्र्य-सिद्धि में ही है क्योंकि वही एक ऐसा प्राणी है जो साधना द्वारा आत्म-संस्कार कर सकता है. पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों तथा जीव-जन्तुओं में यह शक्ति नहीं कि वे मनुष्य की भांति अपना संस्कार कर सकें. वे अपनी सहज वृत्ति से ऊपर नहीं उठ सकते.

दैववाद तथा स्वातन्त्र्यवाद के सम्बन्ध में जो विचार ऊपर प्रकट किए गये हैं, वे हमारे देश की दार्शनिक विचारधारा के अनुरूप हैं किन्तु व्यावहारिकता की दृष्टि से हमारे जीवन में दैव तथा पौरुष दोनों का स्थान है. माघ कवि के शब्दों में—

> "नालम्बते दैष्टिकतां, ना निषीदति पौरुषे ।
> शब्दार्थौ सत्कविरिव, द्वयं विद्वानपेक्षते । —शिशुपालवध, द्वितीय सर्ग, श्लोक ८६.

अर्थात् विद्वान् न तो केवल दैव का सहारा लेता है और न पौरुष पर ही स्थित रहता है. जिस प्रकार सत्कवि शब्द और अर्थ दोनों का आश्रय ग्रहण करता है, उसी प्रकार विद्वान् भी दैव और पौरुष दोनों को जीवन में आवश्यक समझता है. गीताकार ने भी कार्य सिद्धि में अधिकरण, कर्त्ता, भिन्न-भिन्न प्रकार के कारण तथा विविध चेष्टाओं से साथ 'दैवं चैवात्र पंचमम्' कह कर दैव की भी सत्ता स्वीकार की है.

एक बार हमारे प्रधानमन्त्री पं० नेहरू ने नियतिवाद और स्वतन्त्र इच्छाशक्ति का तारतम्य बतलाते हुए लिखा था—'इस विश्व में नियतिवाद और स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति दोनों के लिये स्थान है. इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है. ब्रिज के खेल में प्रत्येक खिलाड़ी को जो ताश के पत्ते मिलते हैं, उसमें खिलाड़ी की स्वतन्त्र-इच्छा-शक्ति का कोई हाथ नहीं रहता किन्तु उन्हीं पत्तों की सहायता से अपने अनुभव और बुद्धि-कौशल द्वारा चतुर खिलाड़ी जो खेल, खेलता है उसमें उसकी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का पूरा योग है.' एक दूसरा उदाहरण लीजिए. पिता के चुनाव में पुत्र स्वतन्त्र नहीं है किन्तु पुत्र रूप में अवतरित व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति द्वारा अपने व्यक्तिव का समुचित विकास कर सकता है. कर्ण के सारथि-पुत्र होने की बात कह कर जब अश्वत्थामा ने उसके मर्मस्थल पर चोट करनी चाही तो कर्ण ने कहा था—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्,
दैवायत्तं कुले जन्म, मदायत्तं तु पौरुषम्।

कर्ण की इस ओजमयी उक्ति में ही नियति और स्वातन्त्र्य का तत्त्व समाहित है.

मंखलि गोशालक का नियतिवाद

इस प्रसंग में मक्खलि गोशाल के नियतिवाद की चर्चा करना भी अवाँछनीय न होगी. मक्खलि, आजीवकों के सुप्रसिद्ध सिद्धांत नियतिवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं. वे बहुत समय तक भगवान् महावीर के साथ रहे किन्तु फिर मतभेद के कारण उनसे पृथक् हो गये. 'भगवती सूत्र' तथा आवश्यक सूत्र' की चूर्णि में दोनों के पार्थक्य का विवरण उपलब्ध है. कहा जाता है कि एक दूसरे से पृथक् होने पर ये दोनों १६ वर्षों तक अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे. इस अवधि में मक्खलि गोशाल की भी प्रतिष्ठा बढ़ गई और श्रावस्ती में उनके अनेक अनुयायी हो गये. उन्होंने अपने आपको तीर्थंकर भी घोषित कर दिया. विद्वानों के मतानुसार भगवान् महावीर से उनका मौलिक मतभेद नियतिवाद के सम्बन्ध में ही था. जहाँ गोशाल एकांत नियतिवादी थे, वहां श्रमण भगवान् महावीर अनेकान्तवाद के समर्थक थे. 'श्रीमदुपासकदशांग-सूत्र' का निम्नलिखित प्रसंग यहाँ उल्लेख्य है—

एक दिन सद्दालपुत्र 'आजीविकोपासक' वायु से कुछ सूखे हुए मिट्टी के कच्चे बरतनों को घर से बाहर निकाल कर धूप में सुखा रहा था. उस समय भगवान् महावीर ने उससे पूछा : 'हे सद्दालपुत्र! ये मिट्टी के बरतन किस प्रकार बनते हैं ? सद्दालपुत्र ने उत्तर दिया : 'हे भगवन् ! प्रथम ये सब मिट्टी के रूप में थे, उस मिट्टी को पानी में भिगो कर उसमें राख और लीद मिलाते हैं, पीछे बहुत खूंद करके उसको चाक पर चढ़ाते हैं जिससे बहुत से करवे. कुंजे आदि तैयार होते हैं.

यह सुनकर श्रमण भगवान् ने फिर पूछा : 'सद्दालपुत्ता, एसणं कोलालभंडे किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जति उदाहु अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जति ?" अर्थात् हे सद्दालपुत्र ! जो ये मिट्टी के बरतन बने हैं, ये सब उत्थान, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से बने हैं या बिना उत्थान, बल वीर्य और पुरुषकार-परा- क्रम से बने हैं ?

इस पर सद्दालपुत्र ने उत्तर दिया, 'भंते ! अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं, नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा, नियया सव्वभावा' अर्थात् हे भगवन् ! बिना उत्थान, बल, वीर्य और पराक्रम से बनते हैं. इनके बनाने में उत्थान, बल और पराक्रम की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सब भाव नियत हैं.

इस पर श्रमण भगवान् ने फिर पूछा, "सद्दालपुत्ता ! जइ णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केलयं वा कोलालभंडं अवहरेज्जा वा विक्खिरेज्जा वा भिंदेज्जा वा अच्छिंदेज्जा वा परिट्ठवेज्जा वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरेज्जा, तस्स णं तुमं पुरिसस्स किं दंडं वत्तेजासि ?"

अर्थात् हे सद्दालपुत्र ! यदि कोई पुरुष कच्चे में से पके हुए तेरे बरतनों की चोरी कर ले जाय, बिखेर दे, फेंक दे, छेद करदे, फोड़ डाले या बाहर लेजाकर छोड़ दे अथवा तेरी अग्निमित्रा भार्या के साथ अनेक प्रकार से भोग, भोगे तो तू उस पुरुष को दंड दे अथवा नहीं ?

यह सुनकर सद्दालपुत्र ने उत्तर दिया, "भंते ! अहं णं तं पुरिसं आओसेज्जा वा हणेज्जा वा बंधेज्जा वा महेज्जा वा तज्जेज्जा वा तालेज्जा वा निच्छोडेज्जा वा निब्भच्छेज्जा वा अकाले चेव जीविआओ ववरोवेज्जा."

अर्थात् हे भगवन् ! मैं उस पुरुष पर आक्रोश करूं, दंडादिक से मारूं, रस्सी से बांध लूं, तर्जना करूं, तमाचा लगाऊं दाम वसूल करके तिरस्कार करूं और उसके प्राण ले लूं.

यह सुन कर भगवान् महावीर ने कहा, "हे सद्दालपुत्र ! तुम्हारे मतानुसार तो उत्थान, बल, वीर्य और पराक्रम कुछ नहीं है, सब भाव नियत ही हैं तो तेरे पके हुए मिट्टी के बरतनों को चोरने वाले या फोड़ने वाले तथा तुम्हारी भार्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से भोग करने वाले को तुम क्यों मारते हो जब कि तुम्हारे मत से होनहार होकर ही रहता है तथा उत्थान, बल, वीर्य, पराक्रम आदि सब व्यर्थ हैं."

श्रमण भगवान् के उक्त शब्द सुन कर सद्दालपुत्र से कुछ उत्तर देते न बना और उसने प्रतिबोध पाया.

इसी प्रसंग में 'उपासकदशांग सूत्र' के ६ठे अध्ययन में उपलब्ध कुंडकोलिक और देव का विवाद भी उद्धरणीय है.

देव ने कहा, उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम व्यर्थ है क्योंकि अनेक बार उत्थानादि करने पर भी कार्य सिद्धि नहीं होती. कहा भी है—

> **प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः, सोऽवश्यं भवति नृणां शुभाशुभो वा,**
> **भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्तिनाशः ।**
> **न हि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनाऽपि यत्नेन,**
> **करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति ।**
>
> —उवासग-दसाओ, ६–१६५

अर्थात् नियति के बल पर जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ होने वाला है, वह होकर ही रहेगा. प्राणी चाहे कितना भी बड़ा प्रयत्न क्यों न करे, जो कुछ नहीं होने वाला होगा, नहीं होगा, और इसी प्रकार, जो होने वाला होगा, उसका नाश भी नहीं हो सकेगा. जो भवितव्य नहीं है, नहीं होगा और जो भवितव्य है, वह बिना प्रयत्न के भी होगा किन्तु जिस व्यक्ति के लिये उसकी भवितव्यता नहीं, उसकी हथेली में आकर भी वह नष्ट हो जायगा.

यह सुन कर कुण्डकोलिक श्रमणोपासक ने देव से पूछा : "तुमने इस प्रकार की दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देव-प्रभाव किस प्रकार प्राप्त किये ? उत्थानादिक से प्राप्त किये अथवा अनुत्थानादिक से ?"
इस पर देव ने उत्तर दिया : "मुझे इस प्रकार की देवऋद्धि आदि विना उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम किये प्राप्त हुई है."

यह सुन कर कुंडकोलिक ने कहा : "यदि यही बात है तो जो जीव उत्थान आदि नहीं करते, वे भी तेरे जैसी दिव्य देव-ऋद्धि क्यों नहीं प्राप्त कर लेते? वस्तुतः तू ने उत्थानादि से ही देव-ऋद्धि प्राप्त की है और तेरा कथन मिथ्या है." उक्त वचन सुन कर देव शंकित हो गया है कि गोशाल का मत सत्य है या श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी का मत सत्य है.

नियतिवाद और पुरुषार्थवाद का विषय चिरकाल से ही दार्शनिक क्षेत्र में वादविवाद का विषय रहा है. श्री गुणरत्नसूरि-कृत *'षड्दर्शन समुच्चयटीका' की प्रस्तावना में नियति के स्वरूप की विवेचना करते हुए कहा गया है—*

ते (नियतिवादिनः) ह्येवमाहु—

> नियतिर्नाम तत्त्वान्तरमस्ति यद्वशादेते भावाः सर्वेऽपि नियतेनैव रूपेण प्रादुर्भावमश्नुवते, नान्यथा. तथाहि यद् यदा यतो भवति तत्तदा तत एव नियतेनैव रूपेण भवदुपलभ्यते, अन्यथा कार्यकारणव्यवस्था प्रतिनियतरूप व्यवस्था च न भवेत् नियामकाभावात्. तत एवं कार्यनैयत्यतः प्रतीयमानामेनां नियतिं को नाम प्रमाणपथ-कुशलो बाधितुं क्षमते ? मा प्रापद् (अन्यथा) अन्यत्रापि प्रमाणपथव्याघातप्रसंगः. तथा चोक्तम्—
>
> **नियतेनैव रूपेण सर्वे भावा भवन्ति यत्,**
> **ततो नियतिजा ह्येते, तत्स्वरूपानुवेधतः ।**
> **यद्यदैव यतो यावत्तत्तदैव ततस्तथा,**
> **नियतं जायते नान्यात् क एनां बाधितुं क्षमः ।**

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि नियतिवादी नियति को कार्यकारण की नियामिका शक्ति के रूप में ग्रहण करते हैं यदि नियति न हो तो कार्यकारण की व्यवस्था ही भंग हो जाय.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियतिविषयक यह दृष्टिकोण अत्यन्त वैज्ञानिक है जिसकी तुलना वैदिक 'ऋत' तथा पाश्चात्य दार्शनिकों के नियतवाद (Deteromiinsm) से की जा सकती है, यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि नियति संबन्धी यह धारणा अन्ध भाग्यवाद (Blind fatalism) की किसी भी प्रकार नहीं है—जहाँ भाग्य के देवता को अन्धा चित्रित किया गया है. बबूल का पेड़ लगाने से बबूल का पेड़ ही उगता है, अन्य कोई पेड नहीं, इसका कारण नियति ही है, और कुछ नहीं. नियति के विषय में यही दृष्टिकोण काश्मीर शैवागमों में भी गृहीत हुआ है. मिट्टी से मिट्टी का घड़ा ही निर्मित होता है, स्वर्ण-घट नहीं, इसके मूल में भी कार्यकारण की नियामिका शक्ति नियति ही वर्तमान है.

मक्खलि गोशाल के नियतिवाद का वास्तविक रूप क्या था, यह प्रश्न सहज ही हमारे मन में उपस्थित होता है. 'उपासकदशांग सूत्र' में श्रमण भगवान् महावीर के तथा मक्खलि गोशाल के अनुयायियों में जिस प्रकार का वार्तालाप हुआ है, उससे मक्खलि भाग्यवादी, (Fatalist) सिद्ध होते हैं, गुणरत्नसूरी द्वारा प्रतिपादित नियतिवाद के मानने वाले नहीं. यदि मक्खलि के अनुयायी गुणरत्नसूरी द्वारा प्रस्तुत नियतिवाद के मानने वाले होते तो वे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रश्नों का भली-भांति ऊत्तर दे सकते थे, उन्हें निरुत्तर होने की आवश्कता नहीं थी.

मक्खलि गोशाल द्वारा किया हुआ नियतिवाद का स्वतंत्र विवेचन यदि उपलब्ध हो तो मक्खलि के नियतिवाद का यथार्थ रूप समझने में बड़ी सहायता मिलेगी. श्रीपरशुराम चतुर्वेदी ने 'आजीवकों का नियतिवादी सम्प्रदाय' शीर्षक अपने एक लेख में लिखते हैं :—

'छुट-पुट अवतरणों के सहारे भी यह अनुमान करते अधिक विलंब नहीं लगता कि मक्खलि गोशाल के नियतिवाद में सारतत्त्व की कमी नहीं है. उनकी मान्यता की आधार-शिला यह प्रतीत होती है कि 'नियत' किसी सुव्यवस्था के सिद्धांत का एक व्यापक एवं सर्वग्राही नियम है जो प्रत्येक कार्य एवं प्रत्येक दृश्य को मूलतः शासित किया करता है, जिस कारण मनुष्य के कर्म स्वातंत्र्य को कोई स्थान नहीं और न उसकी क्रियाशक्ति का ही कोई परिणाम संभव है. वास्तव में यह नियति एक प्रकार के किसी प्राकृतिक व विश्वात्मक नियम की प्रतीक है जिसके किसी न किसी रूप को स्वयं भगवान् बुद्ध एवं महावीर ने भी स्वीकार किया है. उनके द्वारा उपदिष्ट कर्मवाद में भी एक सर्व व्यापक नियम दृष्टिगोचर होता है जो सारे विश्व को नियंत्रित एवं शासित करता है, अन्तर केवल यही हो सकता है कि वहाँ पर अपवाद की भी संभावना है, इसी प्रकार सांख्य दर्शन के परिणामवाद में भी हमें नियतिवाद के तत्व दीख पड़ते हैं, किन्तु वहाँ पर भी आजीवकों की जैसी कठोरता का पता नहीं चलता. नियति की चर्चा करते समय मक्खलि गोशाल का कथन कुछ इस प्रकार का था कि 'जिस प्रकार कोई सूत से भरी रील फ़ेंकने पर बराबर उभरती चली जाती है और वह उसकी पूरी लंबाई तक एक ही प्रकार से बढ़ती जाती है, उसी प्रकार चाहे कोई मूर्ख हो, चाहे कोई पंडित ही क्यों न हो, सभी को ठीक एक ही नियम का अनुसरण कर अपने दुःख का अन्त करना है, मक्खलि गोशाल के इस नियतिवाद की धारणा को उनके दक्षिणी अनुयायियों ने कुछ और भी विकसित किया. उन्होंने, कदाचित् पकुध कच्चायन की मान्यता के अनुसार, नियति को 'अविचलितनित्यत्वम्' जैसा विशेषण अथवा नाम दिया जिसका भाव यह था कि वह सभी प्रकार से अपरिवर्तनशील है. इस प्रकार नियति का रूप गतिशील न होकर सर्वथा 'नित्य स्थायी' (Statie) सा बन जाता है जिसमें किसी प्रकार के काल (Time) की भी गुंजायश नहीं रहती. एक तमिल ग्रन्थ के अनुसार धन एवं निर्धनता, पीड़ा और आनन्द, किसी एक देश का निवास और अन्य देशों में भ्रमण-ये सभी पहले से ही गर्भ के भीतर निश्चित कर दिये गए रहते हैं और यह सारा जगत् किसी कठोर नियति द्वारा शासित और परिचालित है.[1]

मक्खलि गोशाल के दक्षिणी अनुयायियों की विचारधारा को यदि एक बार छोड़ दें तो उक्त उद्धरण के आधार पर मक्खलि उस नियतिवाद के समर्थक जान पड़ते हैं जिसके अनुसार विश्व कार्यकारण के नियमों द्वारा संचालित है. यह दृष्टिकोण 'उपासकदशांग सूत्र' में प्रस्तुत किये हुए नियतिवादी दृष्टिकोण से भिन्न जान पड़ता है तथा श्री गुणरत्नसूरि

१. भारतीय साहित्य (जुलाई १९५८) पृ० २९-३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के उल्लेख से मेल खाता है. मक्खलि गोशाल के नियतिवाद का तात्त्विक रूप वस्तुतः गवेष्य है. 'नियति' देव का रूप है अथवा कर्म का, यह प्रश्न विद्वानों द्वारा विचारणीय है.

देववादी 'देव' को ही प्रत्येक कार्यसिद्धि का हेतु मानते हैं किन्तु जैन दार्शनिक सिद्धसेन दिवाकर ने एकान्त कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, पूर्वकृतवाद, पुरुषार्थवाद आदि की अलग-अलग एकान्त मान्यता को मिथ्यावाद कहते हुए इन सबके समुदाय को ही कार्यसाधक माना है—

कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिसकारणेगंता ।
मिच्छत्तं ते चेव उ, समासओ होंति सम्मतं ॥ —सन्मतितर्क प्रकरण तृतीय खण्ड

गीताकार ने भी किसी भी कर्म की सिद्धि के लिये अधिष्ठन, कर्त्ता, भिन्न-भिन्न साधन, भिन्न-भिन्न चेष्टाएँ तथा देव—ये पाँच हेतु माने हैं.[1]

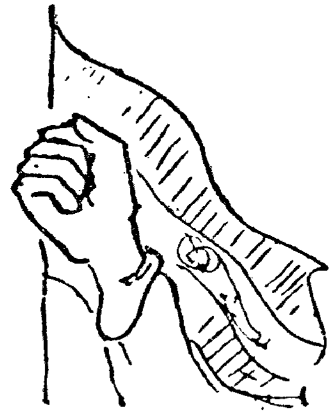

१. पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे । सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥
अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org